# हिन्दी-साहित्य में सतसई परम्परा

(डॉ. दिलीप पटेल, शहादा)

सतसई और सतसैया शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' और 'सप्तशतिका' शब्दों के रूपान्तर हैं जो सात सौ पद्यों के संग्रह-रूप में रूढ हो गये हैं ।

भारतीय संस्कार कुछ ऐसे हैं कि हम प्रत्येक श्रेष्ठ एवं ग्राह्यवस्तु को एक निश्चित संख्या में जानने के अभ्यासी हैं । यह बात लोकगीतों में स्पष्टरूप से परिलक्षित होती है । यथा -

**'सामरे मेरे घर आइ जाइयो ।।**

**सात सहेलीन बीच बाँसुरी अधर बजाइ जइयो ।।'**

त्रिलोक, चार पुरुषार्थ, पंचमुखी, षड्दर्शन, सप्तसिंधु, अष्टसिद्धियाँ, नवनिधियाँ, दशावतार इन उदाहरणोंसे यह बात स्वयंसिद्ध है । साहित्य के क्षेत्र में अष्टयाम, मदनाष्टक, वीराष्टक केवल आठ ही पद्योंपर आधारित काव्यकृतियाँ उपलब्ध हैं परंतु इनके द्वारा कृतिकार के कवित्व का समग्र परिचय प्राप्त करना मुश्किल है । संस्कृत में 'पंचाशिका' तथा हिंदी में 'बाइसी' 'पच्चीसी' नाम से रचनाएँ मिलती हैं परन्तु ये रचनाएँ उतनी लोकप्रिय नहीं हुई जितनी 'शतक' अथवा 'सप्तशती' में बद्ध रचनाएँ हुई हैं । शतक परम्परा में भर्तृहरिकृत 'नीतिशतक' 'वैराग्य शतक' तथा 'श्रृंगार शतक' कवि मयूर कृत 'सूर्य-शतक' बाणकृत 'चण्डी शतक' अमर कृत, 'अमर शतक' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं । इसप्रकार शतक परम्परा मिलती है । इसके अलावा सप्तशती ग्रन्थोंकी परम्परा और भी समृद्ध है । इसके मूल में भारतीयों की विशेष आस्था सात के प्रति होना भी माना जा सकता है । विवाह के समय सप्तपदी, यज्ञके समय सप्तधान्य आदिका विशेष महत्व है । सातजिह्वाएँ होने से अग्नि को सप्तजिह्व कहा जाता है । सप्तर्षि, सप्तदिन, सप्तद्वीप, सप्तस्वर, राज्य के सप्तांग, जैन न्याय के सप्त नय आदि बातों से सात संख्या का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है । भारतीय मानस सप्तसंख्या के प्रति विशेष आस्था दिखाता है । इसी प्रवृत्ति के कारण शतक को सप्तगुणा करके 'सप्तशती' परम्परा का आविर्भाव हुआ होगा ऐसा प्रतीत होता है । मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' और महाभारत के अन्तर्गत 'श्रीमद्भगवद्गीता' में सातसौ श्लोक होना भी इसी प्रवृत्ति के सूचक है । साहित्यिक क्षेत्र में महाराष्ट्रीय प्राकृत में रचित कवि हाल की 'गाह सतसई' (गाथा-सप्तशती) प्रथम उल्लेखनीय कृति कही जा सकती है जिसके अनुकरणपर परवर्ती संस्कृत कवियों-गोवर्धनाचार्य एवं श्री विश्वेश्वर ने अपनी-अपनी 'आर्या सप्तशती' का संकलन प्रस्तुत किया है ।

हिन्दी की सतसई परम्परा का प्रेरणा-स्रोत मुख्य रूप से हाल कवि की 'गाथा सप्तशती' और गोवर्धनाचार्य की 'आर्या सप्तशती है । हिन्दी की सतसई परम्परा सुविशाल और सुदीर्घ है । यह परम्परा शैली एवं विषय दोनों की दृष्टि से उपर्युक्त संस्कृत प्राकृत सप्तशती परम्परा से सूत्रबद्ध है । इन दोनों में अंतर केवल यह है कि संस्कृत प्राकृत के 'सप्तशती' ग्रन्थों में - विभिन्न कवियोंद्वारा रचित मुक्त संकलित हैं जबकि हिन्दी की प्रत्येक सतसई एक ही कवि के स्वरचित पदों का संग्रह है । संस्कृत-प्राकृत के इन संग्रहों का नाम उन में प्रयुक्त विशिष्ट छंद के आधारपर किया गया है । यथा-संस्कृत के 'आर्या' छंद के आधारपर 'आर्या-सप्तशती' प्राकृत के गाथा छंद के आधारपर 'गाथा सप्तशती' । हिंदी की सभी सतसइयों में 'दोहा' छन्द का प्रयोग हुआ है । प्रयुक्त छंद के आधारपर अगर नामकरण किया जाता तो वैशिष्ट्य न रह पाता इसलिए उनके नाम प्रायः रचयिता कवियों के नाम पर आधारित हैं । यथा-तुलसी-सतसई, रहीम-सतसई, बिहारी-सतसई ।

सतसई ग्रन्थों के नामकरण की यह प्रवृत्ति मध्यकालतक ही दिखाई देती है । आधुनिक काल में रचित सतसइयों के नाम उनमें प्रतिपादित विषयों के आधारपर मिलते है । जैसे - वीर सतसई, ब्रजराज विलास-सतसई, वसंन्त सतसई, किसना सतसई ।

हिन्दी की सतसई परम्परा पर्याप्त समृद्ध है । भक्तिकाल से आधुनिक कालतक सत्ताईस सतसई ग्रन्थों के रचे जानेका उल्लेख मिलता है । ये सतसई ग्रन्थ हैं - 'तुलसी-सतसई', रहीम-सतसई, अक्षर अनन्यद्वारा दुर्गासप्तशतीका हिंदी अनुवाद, वृन्द-विनोदसतसई, अलंकार-सतसई, यमक-सतसई, बुद्धजन-सतसई, बिहारी-सतसई, मतिराम-सतसई, भूपति-सतसई, चन्दन-सतसई, राम-सतसई, विक्रम-सतसई, रसनिधि-सतसई, वीर-सतसई (सूर्यमल्ल), बुधजन-सतसैया (दीनदयाल), ब्रजरास विलास सतसई, (अमीरदास), आनंद प्रकाश सतसई (दलसिंह), सतसइया रामायण (कीरत सिंह) वसन्त सतसई, हरिऔध-सतसई (वियोगी हरि), किसान सतसई ( जगनसिंह सेंगर), ज्ञान-सतसई, (राजेन्द्र शर्मा) ब्रज-सतसई (रामचरित उपाध्याय) दयाराम सतसैया (अमृतलाल) मोहन-सतसई (मोहनसिंह) ।

हिन्दी सतसई-परम्परा में ऐतिहासिक दृष्टि से पहला स्थान 'तुलसी-सतसई' का है । यह एक संकलन ग्रन्थ है, सतसई की दृष्टि से रचित कृति नहीं । विषय की दृष्टि से हिन्दी में लिखित सतसइयों को दो वर्गों में रखा जा सकता है -

(१) सूक्ति सतसई ।

(२) श्रृंगार सतसई ।

सूक्ति सतसई में जीवन के किसी पक्ष से संबंधित किसी तथ्य की मार्मिक, रमणीक और चमत्कार पूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति की जाती है और श्रृंगार सतसई में श्रृंगार रसको प्रधानता दी जाती है ।

डा. श्यामसुंदरदासजी, सूक्ति के संबंध में मत प्रतिपादित करते हुए कहते हैं - "सूक्ति या सुभाषित



कपट कला करता नहीं, पूज्य जनों के संग ।
जयन्तसेन मिले उसे, आतम शान्ति अभंग ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अर्थ अच्छे कथन से है । सूक्ति का प्रधान उद्देश्य आदेश है । नित्यप्रति के व्यवहार में जिन बातों से लाभ उठाया जा सकता है, उन्हीं बातों को सूक्तिकार एक मार्मिक और हृदयग्राही ढंग से कहता है, जिससे जन-साधारण के मन में चुभ जाती है ।'' श्रृंगार सतसई में चमत्कार विधायिनी प्रवृत्तिकी अपेक्षा भाव व्यंजना या रस परिपाक को प्रधानता दी जाती है । ऐसी सतसइयों में श्रृंगार के संयोग वियोग दोनों पक्षों की व्यंजना होने के साथ साथ श्रृंगार के विविध पक्षों का आलम्बन उद्दीपनादि का विस्तृत वर्णन भी रहता है । इसलिए श्रृंगार सतसई सूक्ति सतसई से अधिक लोकप्रिय होती है । हिन्दी में सूक्ति सतसई के अन्तर्गत तीन सतसइयों की गणना की जा सकती है -

(१) तुलसी-सतसई । (२) रहीम-सतसई (३) वृन्द-सतसई ।

तुलसी-सतसई में गोस्वामी तुलसीदासजी के भक्ति एवं नीति विषयक दोहे संकलित हैं । सात सर्गों में विभाजित सतसई में भक्ति, उपासना, राम-भजन, आत्मबोध, कर्म व ज्ञान सिद्धांत और राजनीतिका स्वतंत्र विवेचन किया गया है । कुछ दोहे उपदेश प्रधान हैं तो कुछ सुन्दर और मर्मस्पर्शी भी प्राप्त होते हैं । यथा -

**'बरखत हरखत लोग सब, करखत लखें न कोय ।**

**तुलसी भूपति भानुसम, प्रजा भाग बस होय ।।'**

रहीम सतसई में लौकिक जीवन के विविध पक्षोंपर कवि की मार्मिक सूक्तियाँ मिलती हैं । वृन्द सतसई औरंगजेब के दरबारी कवि वृन्द की सतसई विशिष्ट विदग्धतापूर्ण सूक्तियों का संग्रह है । सरल मुहावरेदार भाषा, दृष्टांत सहित जीवनानुभव की अभिव्यंजना इस सतसई की विशेषता है । उदाहरण दृष्टव्य है-

**'फेर न ह्वै है कपट सो जो कीजे व्यौपार ।**

**जैसे हाँडी काठ की चढै ना दूजी बार ।।'**

हिन्दी की श्रृंगार सतसइयों में 'बिहारी-सतसई' 'मतिराम-सतसई' 'रसनिधि-सतसई' 'राम-सतसई' तथा 'विक्रम-सतसई' की गणना होती है । विद्वानों की राय में हिंदी में श्रृंगार सतसई परम्परा का सूत्रपात बिहारी-सतसई से होता है । आचार्य डा. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी अपने 'हिन्दी साहित्य' में हिन्दी की श्रृंगार सतसई परम्परा का प्रारम्भ बिहारी सतसई से मानते हैं ।

महाकवि बिहारी की 'बिहारी-सतसई' महत्वपूर्ण कृति है । आचार्य रामचंद्र शुक्लजी का बिहारी सतसई के संबंध में निम्नलिखित मंतव्य दृष्टव्य है - ''श्रृंगार रसके ग्रन्थों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं । इसका एक एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है ।'' बिहारी-सतसई की महत्ता निम्न दोहे से स्वयं प्रमाणित हो जाती है -

**सतसइया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर ।**

**देखन में छोटे लगें, घाव करे गम्भीर ।।**

बिहारी-सतसई मुख्यरूप से श्रृंगार की रचना है जिसमें कवि ने श्रृंगार के विविध पक्षों - संयोग, वियोग, प्रेमीप्रेमिकाओं की क्रीडाएँ, नखशिख, वयःसंधि, प्रेमोदय का विशद वर्णन किया है ।

प्रेम के जितने खिलवाड़ हो सकते हैं उनका विस्तृत चित्रण 'बिहारी-सतसई' में देखा जा सकता है । संयोग की क्रीडा दृष्टव्य है -

**'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।**

**सोंह करै भौंहनि हँसै, देन कहै नटि जाय ।।'**

संयोग-पक्ष में रूपवर्णन की प्रधानता बिहारी की विशेषता है । नारी सौंदर्य की सुकोमलता, मादकता का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं -

'अरुन बरन तरुनी-चरण-अँगुरी अति सुकुमार ।

चुवत सुरंग रँगसो मनो चपि बिछुवन के भार ।।'

विरहजन्य दुर्बलता की मार्मिक व्यंजना निम्न दोहे में दृष्टव्य है -

'करके मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय ।

सदा समीपिन सखिन हूँ नीकि पिछानी जाय ।।'

अलंकारों की कलात्मक योजना 'बिहारी-सतसई' की विशेषता ही कही जाएगी । अनुप्रास, वीप्सा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग बिहारीजी ने बड़ी खूबी से किया है । भाषा की समास शक्ति का परिचय देनेवाला निम्न दोहा दृष्टव्य है -

'कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात ।

भरे भौन मों करत हैं, नैननु हीं सो बात ।।'

बिहारी सतसई की भाषा ब्रज है । भाषा की प्रांजलता, शब्दों का सुष्ठु चयन, पदविन्यास की कुशलता, लाक्षणिकता, चित्रौपमता, नादयोजना, ध्वन्यात्मकता जो बिहारी सतसई में लक्षित होती है वह अन्य किसी भी कृति में लक्षित नहीं होती ।

ऊपर के विवेचन से काव्यगुणों की दृष्टि से 'बिहारी-सतसई' की उत्कृष्टता प्रमाणित हो जाती है ।






*कई रचनाओं का पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन । सफल शिक्षक, कुशल लेखक । छात्रों में विशेष लोकप्रियता ।*

*सम्प्रति - प्राध्यापक, कला-विज्ञान-वाणिज्य महाविद्यालय शहादा (महाराष्ट्र)*

**डॉ. दिलीप पटेल**
**एम.ए., पी.एच.डी.,**
**हिंदी शिक्षण निष्णात**




उपगारी उपगार की, कभी न करता बात ।
जयन्तसेन महानता, रवि शशि की दिन रात ।।


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंदी की सतसई परम्परा में बिहारी सतसई निश्चयही सर्वप्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट है । बिहारी की काव्य प्रतिभा, बहुज्ञता, और वाग्विभूति अद्वितीय है । संस्कृत, प्राकृत और फारसी काव्य का पर्याप्त प्रभाव होते हुए भी प्रस्तुत सतसई में हर दृष्टि से एक अनोखी नवीनता दिखायी देती है । डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के शब्दों में "बिहारी-सतसई सैकडों वर्षों से रसिकों का हिय-हार बनी हुई है और तब तक बनी रहेगी जबतक इस संसार में सहदयता है ।"

सतसई काव्य-परम्परा के संदर्भ में हिंदी जैन काव्य के मध्ययुग में बनारसीदास, यशोविजय, विजयदेव सूरि, ज्ञानतराय, बुधजन, टेकचंद, पार्श्वदास आदि अनेक जैन कवि हुए । इनके काव्य में तत्वदर्शन तथा भक्ति के साथ-साथ जैन आचार-पद्धति की काव्यात्मक मीमांसा पाई जाती है । सप्तव्यसन और चार कषायों का विरोध तथा दशधर्म के पालन की प्रेरणा का प्रभाव समस्त जैन काव्य में सर्वत्र पाया जाता है । हिंदी जैन काव्यों में अहिंसा का निरूपण सैद्धान्तिक तथा भावपरक दोनों दृष्टियों से पाया जाता है । अहिंसा का स्वरूप तथा हिंसा की अनावश्यकता तथा अव्यावहारिकता को तार्किक एवं बौद्धिक शैली में समझाया गया है । विशाल नीतिकाव्य 'बुधजन सतसई' के प्रणेता बुधजन ने 'इहलोक' और 'परलोक' दोनों में ही हिंसक व्यक्ति को निंदनीय ठहराया है । एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

हिंसक को बैरी जगत, कोई न करे सहाय ।
मरता निबल गरीब लखि, हर कोई लेत बचाय ॥
हिंसा ते ह्वै पातकी, पातक ते नरकाय ।
नरक, निकसि कै पातकी, संतति कठिन मिटाय ॥

इसी परम्परा में श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर' जी द्वारा लिखित सतसई का विशिष्ट स्थान है । हिंदी काव्य की सतसई परंपरा में यह लेखन अनेक अर्थों में वंदनीय है । उसकी स्वतंत्र रूप से चर्चा आवश्यक है लेकिन वह स्वतंत्र लेख का विषय है । लेख की मर्यादाको ध्यान में रखते हुए यहाँ रुकना पडता है । मधुकरजी के ज्ञान, तपस्या, साधना, जीवनानुभव के अनेकानेक रमणीय सिद्ध स्थलों के चित्रण उनके साहित्य में प्रकट हुए हैं । उनके वाङ्मयीन विग्रह की परिक्रमा और वंदना साहित्य की उपयुक्त निधि है । धार्मिक साहित्य के अंतर्गत उसका विचार मर्यादित रूप से न किया जाए तो उसके साहित्य विषयक नाना गुणों का कोष सहदयों के लिए खुला हो सकता है ।

## मधुकर-मौक्तिक

*माला तो रोज हम गिनते हैं, पर जीवन में उसका असर नहीं होता; क्यों नहीं होता ? इसलिए कि माला तो हाथ में फिरती है और मन सब जगह फिरता है । हाथ में रहा हुआ 'मनका' तभी असर करेगा जब मन का मनका उसका साथ देगा । हाथ का मनका और मन का मनका दोनों का मेल बैठना चाहिये ।*

★ ★ ★

*परमात्मा का ध्यान करने के लिए अपना हृदय कमल-समान मानना चाहिये । उसकी एक मध्य, आठ दिशा-विदिशा में नौ पँखुड़ियाँ मान कर एक-एक पँखुड़ी पर नवकार का एक-एक पद स्थापिन करना चाहिये । बीच में अरिहन्त परमात्मा और उनके ठीक चारों ओर सिद्ध परमात्मा, आचार्य भगवान्, उपाध्याय महाराज और साधु मुनिराज की स्थापना करनी चाहिये । चारों कोनों में नवकार के शेष चार पद स्थापित करने चाहिये । फिर आँखें बन्द कर ध्यान शुरु करना चाहिये । अरिहन्त परमात्मा पर ध्यान लगा कर आँखें बन्द कर 'नमो अरिहंताणं' का जाप करो । इसी प्रकार नवकार के नौ पदों का हृदय-कमल की नौ पँखुडियों का आधार लेकर ध्यान करना चाहिये ।*

*ऐसा प्रयत्न करेंगे तो मन घूमेगा नहीं । मन की स्थिरता के लिए आँखें बन्द करना आवश्यक है । मन मुकाम पर तब रहता है, जब हम यह महसूस करते हैं कि हम माला नहीं फेर रहे हैं, मन्त्र का जाप कर रहे हैं । सच्चा मन्त्र वही है जो मन को मन्त्रित कर डाले । यदि मन मन्त्रित नहीं हुआ, तो समझ लेना कि अभी तक मन्त्र हाथ नहीं लगा । मन्त्र हाथ लगते ही मन मन्त्रित हो जाता है अथवा मन मन्त्रित हो जाए, तो समझ लेना कि मन्त्र हाथ लग गया ।*

★ ★ ★

*जिससे मन को शिक्षा मिलती है - सलाह मिलती है, वह मन्त्र है । मन्त्र से ही मन्त्री शब्द बना है । मन्त्री राष्ट्रपति का सलाहकार होता है । नवकार मन्त्र भी मन को सलाह देता है । वह कहता है - मन तर; तो यह मन्तर मन को तरने की, पार होने की सलाह देता है ।*

**– जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'**

भूल गया उपगार को, अपकारी अविनीत ।
जयन्तसेन सुखी नहीं, खोता निज परतीत ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org